इकाई 3 संविधान और सामाजिक परिवर्तन

संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 भारतीय संविधान का द ष्टिकोण
3.3 संविधान की प्रस्तावना
3.4 जनता का उत्थान
3.5 जनता के अधिकार
3.5.1 अधिकारों की प्रकृति
3.6 राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत
3.6.1 लोक कल्याण एवं गौरवपूर्ण जीवन
3.6.2 कानून के दायरे में
3.6.3 आर्थिक दायरे में
3.6.4 श्रमिकों के अधिकार
3.6.5 बच्चों एवं कमजोर वर्गों के लिए
3.6.6 कृषि व पर्यावरण के दायरे में
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास

3.1 प्रस्तावना

किसी देश का संविधान उसकी सरकार के लिए सर्वोच्च विधि-राजनीतिक सर्वोच्च आलेख होता है। इसमें प्रजा के अधिकारों का भी विवरण होता है जो कि न्यायसम्मत होते हैं। सामान्य अर्थ में यह सत्ता का प्राधार एवं शासितों के प्रति शासकों की बाध्यताओं को प्रस्तुत करता है। ये बाध्यताएँ न सिर्फ़ सरकारी सत्ता की सीमा को ही बल्कि जनता की सरकार से अपेक्षा को भी बतलाती हैं।

किसी संविधान के लिए एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भविष्योन्मुखी हो, ना कि अतीतोन्मुखी। ऐसी जनता जो अपने मामले रीति-रिवाजों एवं परंपराओं के अनुसार निबटाती है उसे संविधान की कोई आवश्यकता नहीं होती। उनके लिए अपने अग्रजों की स्म तियाँ ही काफी होती हैं। इतिहास साक्षी है कि जब भी कोई संविधान बनाया गया है, वह एक क्रांति के बाद बना है। किसी भी संविधान का मन्तव्य एक नई सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को प्रवेश कराना रहा है।

अठारहवीं शताब्दी में, जब विश्व में प्रथम लिखित संविधान सामने आया–संयुक्त राज्य अमेरिका में–1789 में एक संघीय गणतंत्रतात्मक सरकार की महज संकल्पना ही प्रस्तुत हुई। यह ब्रिटेन से राजतंत्रीय औपनिवेशिक संबंधों का सिलसिला तोड़ना था। सरकारी सत्ता हेतु सीमाओं के रूप में जनता के अधिकारों को समाविष्ट करते हुए दो वर्षों के भीतर ही संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान दस संशोधनों से गुज़रा। धारणा यह थी कि जनता के पास स्वाभाविक रूप से, कुछ निश्चित अधिकार हैं और सरकार

उनका हनन नहीं कर सकती। ये अधिकार उदार यथेच्छकारिता के सिद्धांत (liberal laissez faire doctrine) के रूप में सोचे गए जो कि जिंदगी, स्वतंत्रता एवं निजी संपत्ति के अधिकारों को प्रेरित करते हैं।

बीसवीं सदी में, अधिकारों की यह सोच कल्याण की द ष्टि से और गहन हुई, और तो और समाजवादी विचारों में भी। विश्व के दूसरे संविधानों में भी नए अधिकार शामिल किए गए और पहले के अधिकारों के क्षेत्र को न्यायिक व्याख्या द्वारा विस्तार दिया गया। यहाँ तक कि अधिकारों के कथन भी दुरुस्त किए गए। इस प्रकार, अब के म तक संयुक्त सोवियत समाजवादी गणतंत्र के संविधान में लाभकारी रोजगार को प्रत्येक नागरिक के एक मौलिक आधिकार के रूप में शामिल किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में, जनता के कमजोर वर्गों के हित को स्वीकार किए जाने को न्यायायिक प्रमाण माना गया। आयरलैंड के संविधान में प्रजा के कल्याण हेतु कुछ नीति-निदेश जोड़े गए।

3.2 भारतीय संविधान का द ष्टिकोण

ब्रिटेन से शक्ति के स्थानांतरण के पश्चात् भारतीय संविधान की घोषणा एक नए युग की शुरुआत थी। प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण, यह ब्रिटेन के राजतंत्रीय शासन के स्थान पर गणतंत्रात्मक लोकतंत्र की स्थापना था। आशान्वित रूप से, भारतीय संविधान ने विश्व का रुझान स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपनी जनता के अनुभवों द्वारा विरासत में ग्रहण किया। भारतीय संविधान में उदारवादी लोकतंत्र के ढाँचा को कायम रखा गया, परन्तु सरकारी दखलंदाजी के क्षेत्र को बढ़ाया गया जो कि सामाजिक सुधार एवं कल्याण को ध्यान में रखते हुए किया गया। नागरिकों के अधिकार और इनकी समानता को भंग करना राज्य के लिए निषेध है– अधिकार जो आवश्यक रूप से विलोम प्रकृति के थे। समाज के लिए अस्प श्यता निषेध है। राज्य को इसकी छूट है कि वह प्रजा के कमजोर वर्गों के सुधार हेतु विशेष कदम उठाए। संविधान में आइरलैंड के उन आदर्शों को भी अपनाया गया जिसमें सरकार को कल्याण-कारी कदमों को लेने के लिए आशावादी नीति-निदेश जारी किए गए हैं।

3.3 संविधान की प्रस्तावना

हर उदारवादी लोकतंत्रतात्मक संविधान की एक प्रस्तावना होती है जिसमें संविधान का सार निहित होता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भी राजनीति के आदर्श उद्देश्यों का आलेख है।

प्रथम बिंदु जो ध्यातव्य है, भूमिका के अनुसार, यह है, 'हम, भारत की प्रजा' जो कि भारत के विधान सभा में हैं, अपनाते हैं, नियमबद्ध करते हैं और खुद को यह संविधान अर्पित करते हैं। संक्षेप में संविधान प्राधिकरण, देश के सर्वोच्च कानून के रूप में, जनता से उत्पन्न हुआ है न कि किसी बाह्य सत्ता की दया से। अत: भारत एक लोकतंत्रात्मक, प्रभुतासंपन्न देश है। भारत गणतंत्र भी है। यह किसी भी प्रकार के वंशानुगत शासन को नहीं मानता।

राज्य का लोकतंत्रात्मक स्वरूप जनता द्वारा संघीय संसद के प्रथम सदन एवं राज्य विधान सभाओं के चुनाव से सुनिश्चित होता है जिसका आधार वयस्क मताधिकार है। प्रत्येक निवासी, जो स्वस्थ मस्तिष्क का वयस्क नागरिक हो, तथा अपराध, भ्रष्टाचार या अनैतिक कार्य के लिए रोका न गया हो, वोट देने के लिए सूचीबद्ध होने का अधिकारी है। (संविधान का अनु॰ 326)।

संविधान सभी नागरिकों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय का वायदा करता है; वैचारिक अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता देता है; स्तर और अवसर की समानता तथा व्यक्ति विशेष की शान को ध्यान में रखते हुए भाईचारे को बढ़ावा देता है। 1976 में एक संशोधन के तहत धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवाद की स्थापना का उद्देश्य प्राप्त करने और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को कायम रखने की घोषणा की गई।

3.4 जनता का उत्थान

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का अभिप्राय कभी भी लादा नहीं जा सकता। अँग्रेज़ों ने भारत में विधायिका में चुनाव प्रणाली को शुरू किया। जब तक नया संविधान लागू नहीं हुआ, फिर भी, भारत के केवल 15 प्रतिशत वयस्कों को मत डालने का अधिकार था, मताधिकार संपत्ति एवं अकादमिक योग्यताओं द्वारा प्रतिबंधित था। प्रयत्न द्वारा इसको सार्वभौमिक बनाया गया और यह सरकार के बनने तथा न बनने की कुंजी बन गया।

संविधान ने न केवल जनता को अपने भाग्य का अंतत: मुखिया बनाया है, बल्कि उन्हें समान भी बनाया है। भारत का पारंपरिक सामाजिक तंत्र मजहब तथा वंशवादी अलगाव में बँटा था और जातियों की दीवारों से पटा था, इस प्रकार इसने अपना खरापन खो दिया था। व्यक्ति-व्यक्ति शासन की मूल इकाई बन गया। हर व्यक्ति को सभी प्रकार के शासकीय एवं आर्थिक अधिकार दिए गए। इसी समय, अल्पसंख्यक वर्गों को कुछ सांस्कृतिक अधिकार भी मिले।

3.5 जनता के अधिकार

भारतीय संविधान के तहत दो प्रकार के अधिकार हैं : कुछ तमाम 'जनता' को दिए गए है तथा कुछ केवल 'नागरिकों' को। प्रथम प्रकार के अधिकार ग़ैर-नागरिकों के लिए भी हैं और इसमें शामिल हैं – कानून के समक्ष समानता एवं कानून की एक समान सुरक्षा (अनु० 14), ग़ैर-कानूनी दोष सिद्धि से सुरक्षा (अनु० 20), जीवन-यापन एवं आत्मिक स्वतंत्रता (अनु० 21), अवैध प्रतिरोध से सुरक्षा (अनु० 22), मानवों की भीड़ में शोषण तथा सार्वजनिक उद्देश्यों के अलावा बेगार लेने के विरुद्ध अधिकार (अनु० 23), बच्चों को खतरनाक रोजगार के विरुद्ध अधिकार (अनु० 24), मजहब की स्वतंत्रता (अनु० 25), मजहबी मामलों के प्रबंध हेतु मजहबी संस्थाओं को स्वतंत्रता (अनु० 26), तथा करों के भुगतान से मुक्ति जो कि विशेषतौर से किसी मज़हब विशेष या मजहबी संस्थाओं के लाभ की प्रक्रिया में हों (अनु० 27), मज़हबी संस्थाओं द्वारा संचालित विद्यालयों में लादे गए मज़हबी निर्देशों से स्वतंत्रता (अनु० 28), अल्पसंख्यकों की सुरक्षा (अनु० 29), अल्पसंख्यकों को इच्छानुसार शैक्षिक संस्थानों को स्थापित एवं संचालित करने का अधिकार (अनु० 30), संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु० 32 और 226) तथा कानून के प्राधिकार सम्मत संपत्ति से वंचित न करने का अधिकार (अनु० 300 ए)।

अन्य सभी अधिकार जो नागरिकों को हैं, वे हैं – राज्य द्वारा भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (अनु० 15), सार्वजनिक रोजगार में अवसरों की समानता का अधिकार (अनु० 16), असप श्यता के विरुद्ध अधिकार (अनु० 17), सेना या शिक्षा के सिवाय राज्य उपाधियों के निर्माण के विरुद्ध अधिकार (अनु० 18), भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, शांतिपूर्वक एवं निहत्थे एकत्र होने का अधिकार, संस्थाएँ या

संघ निर्माण का अधिकार, स्वेच्छापूर्वक तमाम भारतीय भूखण्ड में घूमने का अधिकार और भारतीय भूखण्ड के किसी भी हिस्से में रहने तथा बसने का अधिकार और किसी भी व्यवसाय को अपनाने तथा किसी भी उद्योग या व्यापार करने का अधिकार (अनु० 19)।

3.5.1 अधिकारों की प्रकृति

अधिकारों के विषय में अग्रलिखित बिंदु विचारणीय हैं : (1) ये अधिकार विलोम प्रकृति के हैं क्योंकि ये अधिकारियों को इनका उल्लंघन करने से रोकते हैं। (2) जब कि इन अधिकारों में से ज्यादातर राज्य के विरुद्ध हैं, इनमें से कुछ, जैसे अस्प श्यता के विरुद्ध अधिकार (अनु० 17) और अल्पसंख्यकों को सुरक्षा का अधिकार (अनु० 29), समाज के विरुद्ध हैं। (3) जबकि ज्यादातर अधिकार व्यक्ति विशेष के लिए हैं, कुछ वर्गों के लिए हैं (अनु० 27, 29 और 30)। (4) ज्यादातर अधिकार शर्त-आधारित हैं कि अधिकार से पूर्व सार्वजनिक हित, कानून एवं व्यवस्था, मर्यादा और प्रजा के कमजोर वर्गों का हित आदि पर विचार किया जाए।

भारत में अधिकारों की प्रकृति को समझने में ये बिंदु महत्त्वपूर्ण हैं। हम यह बता चुके हैं कि परंपरावादी उदारवादी लोकतंत्र जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकारों को विलोम रूप से बनाया गया था जिससे राज्य उनका हनन नहीं कर सकते। समाज के अन्य सदस्यों द्वारा इन अधिकारों की सुरक्षा का मसला राज्य की विधि और कानून व्यवस्था द्वारा निभाया जाता है। उदाहरणार्थ, यू एस ए में जातीय दंगे अपराधात्मक कानून के ही अंतर्गत निपटाए जाते हैं जिसके लिए राज्य संवैधानिक तौर पर बिना किसी भेदभाव के ऐसा करने को बाध्य है। दूसरी तरफ, भारत में ऊँच वर्ण के लोगों द्वारा अस्प श्यता सीधे-सीधे संविधान के प्रति अपराध है। इसी प्रकार, बहुसंख्यक समुदाय द्वारा अल्पसंख्यकों के आधिकारों का उल्लंघन संविधान के समक्ष अपराध है। यह सीधे-सीधे राज्य का संवैधानिक कर्तव्य है कि वह दलितों (अनुसूचित जातियों के लोग), आदिवासियों (अनुसूचित जनजातियों से संबंधित लोग) और मजहबी तथा भाषाई अल्पसंख्यकों के सामाजिक अधिकारों की रक्षा करें।

पहले के उदार संविधानों से भारत के संविधान का एक अन्य महत्त्वपूर्ण अंतर है अधिकारों की सीमाओं की विशिष्टता। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन सीमाओं का निर्धारण न्यायालयों द्वारा होता है और ये न्यायाधीशों के निजी मत पर आश्रित होते हैं। इन निजी मतों का भारत में निषेध तो नहीं है परन्तु वे संविधान सम्मत होने ही चाहिए। जैसा कि बताया जा चुका है सांवैधानिक सीमाओं का सरोकार न केवल कानून एवं व्यवस्था से है वरन्, सर्वसामान्य के हित में भी हैं जिसमें सामाजिक संपन्नता, नैतिकता और समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण भी निहित हैं।

अंततः, संविधान में वर्णित वर्गों और व्यक्ति विशेष दोनों की सम्मति देश के मजहबी इतिहास का दु:खद परिणाम है। भारतीय संविधान की मजहबी तथा भाषाई अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्गों के प्रति वचनबद्धता, उन यूरोपीय संविधानों की याद दिलाता है जो कि दो विश्व युद्धों के मध्य अल्पसंख्यक संधियों के तहत् बनाए गए जिसमें राज्यों को उनकी स्थापना से पूर्व हस्ताक्षर करने पड़े। उन देशों में पोलैंड, योगोसोलाविया और चेकोसोलोवाकिया हैं। अंतर यह है कि इन यूरोपीय राज्यों ने कभी भी गंभीरता से उन्हें लागू नहीं किया। भारत में इनको पूर्ण गंभीरतापूर्वक लागू किया जा रहा है।

इस प्रकार भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकारों की बनावट सामाजिक परिवर्तन में राज्य की सक्रिय भूमिका को ध्यान में रखती है।

3.6 राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत

राज्य की एक अन्य सीधे-सीधे सक्रिय भूमिका सतत् सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को लाना है जिसके लिए भारतीय संविधान में राज्य की नीति के कुछ नीति-निदेशक सिद्धांतों को वर्णन किया गया है। ये सिद्धांत न्यायालय द्वारा सीधे लागू नहीं किए जाते हैं। परंतु न्यायालय, संविधान की व्याख्या करते समय, मौलिक अधिकारों सहित उनके द्वारा मार्गदर्शन लेते हैं। संविधान राज्य को आदेश देता है कि वह शासन में मूलरूप से उनका आदर करे और नियमों को बनाते समय उनका पालन करे।

3.6.1 लोककल्याण एवं गौरवपूर्ण जीवन

राज्य के लिए सबसे मौलिक नीति-निर्देश है एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करने का प्रयास करना जिसमें न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक इकाइयाँ सभी संस्थानों को अपनी राष्ट्रीय जिंदगी जीने को प्रेरित करें। विशेषतौर से राज्य, वेतनों की असमानता को कम करे, और स्तर, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को खत्म करे न केवल व्यक्ति-व्यक्ति में वरन् विभिन्न क्षेत्रों में रह रहे या विभिन्न उद्यमों में संलग्न व्यक्तियों में (अनु॰ 38)।

विशेषतौर से राज्य ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित करे जिसमें स्त्री एवं पुरुष सहित सभी नागरिकों को समान रूप से जीविकोपार्जन के माध्यम उपलब्ध हों, मालिकाना हक और नियंत्रण में सर्वहित को सर्वोपरि माना जाए, संपत्ति और उत्पादन के माध्यमों का ध्रुवीकरण न हो ताकि सार्वजनिक अहित न हो, स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन सुनिश्चित हो, श्रमिकों, स्त्री व पुरुषों के स्वास्थ्य एवं सामर्थ्य की रक्षा हो, बालकों को व्यस्नों से बचाया जाए और उन्हें उनके विकास के स्वास्थ्यपूर्ण, स्वतंत्र एवं गरिमापूर्ण अवसर दिए जाएँ (अनु॰ 39)।

3.6.2 कानून के दायरे में

संविधान के इस भाग (भाग 4) के अनुच्छेदों में इन मूल उद्देश्यों की व्याख्याएँ हैं। राज्य समान अवसरों के आधार पर न्याय सुनिश्चित करने हेतु कानून तंत्र के चालन को प्रोत्साहित करे और विशेषतौर से, उपयुक्त विधायी नियमों या नीतियों या अन्य तरीकों से नि:शुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराए, इसको सुनिश्चित करे कि न्याय दिलाने के अवसरों से कोई भी नागरिक आर्थिक, और दूसरी अयोग्यताओं के कारण वंचित न रहे (अनु॰ 39ए, 1977 में जोड़ा गया 42वाँ संविधान संशोधन)। राज्य इसका भरकस प्रयास करे कि संपूर्ण भारतीय क्षेत्र में एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित हो (अनु॰ 44)। राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में राज्य न्यायपालिका को कार्यकारिणी से विलग करने के कदम उठाए (अनु॰ 50)।

राज्य ग्राम पंचायतों को गठित करने के कदम उठाए और उन्हें आवश्यक शक्तियों तथा प्राधिकारों से संपन्न करे ताकि वे स्वावलंबी सरकार की इकाइयों के रूप में समर्थ हों (अनु॰ 40)।

3.6.3 आर्थिक दायरे में

आर्थिक दायरे के अंतर्गत और भी संरक्षित वायदे हैं। राज्य, अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिधि में, काम के अधिकार, शिक्षा को सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी कदम उठाए, और बेरोजगारी, व द्धावस्था, बीमारी और विकलांगता तथा अन्य सामर्थ्यहीनता की दशा में सार्वजनिक सहायता दे,

काम का अधिकार यूँ ही किसी भी उदारवाद प्रजातांत्रिक राज्य द्वारा स्वीकृत नहीं किया जा सकता क्योकि यह उत्पादन के सभी साधनों पर नियंत्रण नहीं करता। सामाजिक बीमा की प्रथा भी केवल विकसित औद्योगिक देशों में उपलब्ध है हाँलाकि यह प्रक्रिया अस्थाई है। एक विकासशील देश, जैसे भारत, के लिए सभी के लिए काम और/या सामाजिक बीमा, स्पष्ट रूप से बहुत ज्यादा आशा करना ही है।

राज्य प्रजा के पोषण के स्तर के उत्थान तथा जीवन-स्तर पर ध्यान देना और सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुधारना अपनी मौलिक जिम्मेदारी समझे और, विशेषतौर से, मादक तथा हानिकारक औषधियों को चिकित्सकीय उद्देश्यों के अलावा उपभोग के निषेध का हर संभव प्रयत्न करे (अनु॰ 47)।

3.6.4 श्रमिकों के अधिकार

राज्य काम की उपयुक्त तथा मानवीय स्थितियों को संरक्षित करने और माता को आराम पहुँचाने के उपाय करे। राज्य उपयुक्त विधान या आर्थिक प्रबंधन या किसी अन्य प्रकार से यह संरक्षित करने के प्रयास करे, ताकि उद्योग, कृषि या अन्य कार्य में संलग्न सभी श्रमिकों को जीविका वेतन, जीवन के उचित स्तर के मुताबिक काम की परिस्थितियों तथा खाली समय में पूर्ण मनोरंजन और सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसर उपलब्ध हों और, विशेषतौर से, राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति स्तर पर या सहभागिता स्तर पर कुटीर उद्योगों के प्रोत्साहन का प्रयास करे (अनु॰ 43)। संविधान के 42वें संशोधन के अनुसार, राज्य, उपयुक्त विधान या अन्य प्रकार, इसके कदम उठाने के आदेश जारी करे, ताकि किसी संस्था के व्यवसायों के प्रबंधन, अन्य किसी उद्योग में संलग्न संस्था के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों की भागीदारी हो। (अनु॰ 43ए)।

3.6.5 बच्चों एवं कमजोर वर्गों के लिए

राज्य को निदेशित किया गया है कि वह 10 वर्षों के अंतराल में (संविधान की घोषणा से) चौदह साल तक के सभी बालकों को नि:शुल्क शिक्षा मौहय्या कराए (अनु. 45)।

राज्य कमजोर वर्गों के लोगों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों को विशेष सावधानी से प्रोत्साहित करे, और, विशेषतौर से, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों को किसी भी प्रकार के सामाजिक अन्याय तथा शोषण से बचाए (अनु॰ 46)।

3.6.6 कृषि व पर्यावरण के दायरे में

राज्य कृषि और उद्योगों का आधुनिक विज्ञान की तर्ज पर विकास का प्रयास करे (अनु॰ 48)।

यह राज्य का दायित्व है कि वह संसद द्वारा घोषित हर राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारक या स्थल या ऐतिहासिक द ष्टि की वस्तु की रक्षा करे, उन्हें विरूप, नष्ट, हटाए जाने, खत्म करने या तस्करी करने, जैसी परिस्थिति हो, से बचाए (अनु॰ 49)।

अनु. 48ए, 1977 में समाविष्ट 42वें संशोधन के आदेशानुसार राज्य का यह भी कर्त्तव्य है कि वह देश के पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार करे और वनों एवम् वन्य-जीवन की रक्षा करे।

3.7 सारांश

यह इकाई राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित अभिलाषाओं पर केंद्रित है जो कि भारत के संविधान में उल्लिखित हैं, यही भारत की राजनीति का सर्वोच्च विधि-राजनीतिक परवाना है। भारतीय संविधान अपने-आप में अनुलोमात्मक बिंदु संजोए है जो कि विश्व भर की जनता के अनुभवों पर आधारित हैं। वास्तव में, प्रस्तावना में संविधान सार है, सर्वाधिक बल जनता के अधिकारों की रक्षा करना और हर प्रकार का न्याय दिलाना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्व भी प्रस्तावित हैं जो कि शासन की नीति के मूल हैं। यह श्रमिकों, बच्चों एवं कमजोर वर्गों के आधिकारों की रक्षा और देश के कृषि, पर्यावरण वन एवं वन्य-जीवन के पालन, विकास तथा सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता है।

3.8 अभ्यास

1) अधिकारों के प्रति विश्व द ष्टिकोण की चर्चा कीजिए जो कि भारतीय संविधान में उल्लिखित अधिकारों की प ष्ठभूमि बना। यह कहाँ तक परिवर्तन लाने वाला है?

2) भारतीय संविधान में 'जनता' का स्थान है?

3) भारतीय संविधान में अनुलोम और विलोम अधिकार क्या हैं?

4) भारत में व्यक्ति विशेष को प्रदत्त अधिकार क्या हैं? वर्गों के अधिकार क्या हैं?

5) भारत में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में परिवर्तन की कितनी शक्ति है? ये जीवन के किन क्षेत्रों तक पहुँचते हैं?